International Journal of Applied Research 2016; 2(1): 244-246

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(1): 244-246
www.allresearchjournal.com
Received: 23-11-2015
Accepted: 25-12-2015

डॉ. गीता यादव
ऐसिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय
कोसली

Correspondence
डॉ. गीता यादव
ऐसिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय
कोसली

बच्चन की आत्मकथाः नई पीढ़ी के लिए पाथेय

डॉ. गीता यादव

शोध–आलेख सार
अपनी आत्मकथा में बच्चन एक ऐसे व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं जो जाति, वर्ण और सम्प्रदाय में बँटे भारतीय समाज को बड़े हेय रूप में देखते हैं, उसकी दुर्दशा और अमानवीय रूप की वे चिंता भी करते हैं और चिंतन भी। पर सबसे बड़ी बात और उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि वे उन परिस्थितियों से न हार मानते हैं, न उन्हे यथावत् स्वीकार करते हैं बल्कि दम ठोककर उनका सामना करते हैं, टकरातें हैं और स्वयं के टूट जाने की परवाह किए बिना जाति बहिष्कार तक के अपमान को झेलने का साहस भी रखते हैं। २१वीं सदी में भी जाति और धर्म के पूर्वाग्रहों से न भारतीय राजनीति मुक्त है न भारतीय समाज। ऐसे में उसे गलत मानते हुए भी, उसका प्रतिकार न करके, उसे यथास्थिति स्वीकार करने वाले युवा वर्ग के लिए बच्चन का जीवन चरित निश्चित ही पथप्रदर्शक है।

मुख्य–शब्दः आत्मकथा, जाति बहिष्कार, समाज बहिष्कार, कर्म–कांड, आत्महत्या, मानववाद।

मूल प्रतिपादन

बच्चन की आत्मकथा क्या भूलूँ क्या याद करूँ के लिए डॉ शिव मँगल सिंह सुमन ने कहा था–'ऐसी अभिव्यक्तियॉ नई पीढ़ी के लिए पाथेय बन सकेगी, इसी में उसकी सार्थकता भी है।[1] यह कथन अक्षरशः सत्य है। सभी जानते हैं कि आत्मकथात्मक साहित्य में बच्चन का नाम और स्थान सर्वोपरि है। और यह सिर्फ इसलिए नही है कि बच्चन ने अपनी आत्मकथा में अपने और अपने समाज के बारे में बहुत निर्भिकता और बेबाकी से लिखा, अपितु इसलिए है कि यह आत्मकथा वास्तव में नई पीढ़ी के लिए, युवा पीढ़ी के लिए प्रेरणादायी और पथ प्रदर्शक है। यह आत्मकथा सिर्फ बच्चन का जीवन चरित नही है अपितु डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहें तो 'इसमें केवल बच्चन जी का परिवार और उनका व्यक्तिव ही नही उभरा है बल्कि उनके साथ समूचा काल और क्षेत्र भी अत्यंत जीवंत रूप में उभरकर सामने आ गए हैं।[2] ऐसा माना जाता है कि महापुरषों के जीवन चरित धर्म ग्रंथों के समान होते हैं। धर्मग्रंथ मनुष्य को विशुद्ध मानवीय आधार पर जीना सिखाते हैं, एक उद्धेश्यपूर्ण और प्रेमपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। बच्चन की आत्मकथा उस नई पीढ़ी के लिए प्रेरणा और आदर्श प्रस्तुत करती है जो जीवन की असफलताओं से निराश होकर आत्महत्याओं तक का रास्ता अपना लेते हैं। आत्मकथा में वर्णित बच्चन का आरम्भिक जीवन अभावों, असफलताओं और एकाकीपन की कहानी है और कहीं न कहीं निराला की इन पंक्तियों की याद दिलाती है कि 'दुख ही जीवन की कथा रही [3] पर साथ ही उन असफलताओं और अकेलेपन से टूटे बिना, उनसे संघर्ष करने और उन पर काबू पाने वाले साधारण व्यक्ति की असाधारण विजयगाथा है और फिर निराला की पंक्तियों में कहें तो 'वह एक और मन रहा राम का जो न थका [4] को चरितार्थ करता है ।

अपनी आत्मकथा में बच्चन बताते हैं कि उनकी बिरादरी द्वारा उनका परिवार जाति–च्युत कर दिया गया था। इसका कारण यह था कि उन्होने एक ऐसे परिवार में भोजन कर लिया था जो पहले से ही समाज–बहिष्कृत था। इस प्रसंग में बच्चन की भावुकता, क्रांतिकारिता और विशुद्ध मानवीय रूप के दर्शन होते हैं और साथ ही हिंदू समाज की सड़ी गली प्रथाओं की भी, जो आज के भारतीय समाज में भी समाप्त नही हुई हैं बल्कि कहीं तो उसी रूप में और कहीं रूप बदल कर उनकी वृद्धि ही हुई है। बच्चन अपने जाति बहिष्कृत होने के प्रसंग का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि घर में उनके भाई शालिग्राम के गौने की दावत थी जिसमें परिवार के लोगों और निकट संबंधियों को निमंत्रण दिया गया था परंतु 'इससे पूर्व मैंने एक ऐसा काम कर लिया था जो मेरे रिश्तेदारों के रूढिगत संस्कारों पर आघात करने वाला था।' वह काम क्या था ? बच्चन बताते हैं 'मोहतशिम गंज में एक कायस्थ परिवार था। पति की मृत्यु हो गई – विधवा कई बच्चों को लेकर कहॉ जाए? बाहर

से आए एक सिख सरदार ने उसे बिठा लिया। थोड़े दिनों बाद सरदार की भी मृत्यु हो गई। परिवार समाज बहिष्कृत हो गया, यानी रोटी–बेटी का व्यवहार बंद।' बच्चन इस परिवार में भोजन करना स्वीकार कर लेते हैं ताकि उस परिवार की सयानी बेटी का विवाह एक अच्छे कायस्थ परिवार में हो जाए क्योंकि लड़के वालों ने यह शर्त रखी थी कि अगर दो–चार अच्छे कायस्थ घरों के लोग उनके यहॉ रोटी खा लें तो वे विवाह के लिए राजी हैं। बच्चन लिखतें हैं 'अपने उदार विचारों के कारण मुझे इस परिवार से बड़ी सहानुभूति थी। उन लोगों ने बड़ी आवभगत से हमें खाना खिलाया। उनकी आँखों में आँसू थे, जैसे हमने उनके साथ जो उपकार किया था उसे वे व्यक्त न कर सकते हों। हम खुश थे कि चलो हमने एक परिवार का उद्धार किया। बिरादरी के दकियानूस इस पर जले–भुने बैठे थे।[5] यह बच्चन का वह उदारवादी और मानववादी रूप है जिससे हर नई पीढ़ी को सीखने और प्रेरणा लेने की जरुरत है – बिना शोर मचाए चुपचाप व्यक्तिगत आग्रहों और प्रयासों से समाज में सकारात्मक पहल करना।

शरतचंद्र रविन्द्रनाथ को लिखे एक पत्र में लिखतें हैं – 'वर्तमान काल भी एक बड़ी वस्तु होती है उसका दावा न मानने से दंड मिलता है।[6] पर सच्चाई यह है कि वर्तमान का दावा मानने से भी दंड मिलता है और वह दंड बच्चन को भी मिला। बच्चन लिखते हैं 'हमारे यहॉ बहुभोज का भोजन तैयार – आठ बजे रात का समय दिया गया था। आठ बज गए, नौ बज गए, दस बज गए, ग्यारह बजने के निकट पहुँचे, कोई न आया। हम चकित–चिंतित थे। तब किसी कहारिन ने बताया कि बाबू मोहनलाल हमारे यहॉ खाना खाने इसलिए न आए थे कि मैंने बहिष्कृत परिवार में भोजन कर लिया था। मेरे हरिजनों के साथ खाने–पीने की बात वे जानते ही थे, और उन्होने हमारे सब निकट संबंधियों को आगाह कर दिया था कि जो हमारे यहॉ भोजन करेगा वह जाति–च्युत कर दिया जायगा। इसी डर से कोई हमारे यहॉ नही आया था।[7] इस प्रसंग में समाज की निरंकुशता और निर्ममता, उसके परिपेक्ष्य में व्यक्ति की चिंता और दारुणता, उसका भय और अपमान तथा बच्चन की उदारता और उनका आक्रोश एक साथ प्रकट हुआ है। वे लिखते हैं 'निमंत्रण न स्वीकार करना मैं समझ सकता था। न आना था तो सूचित करने की भलमंसी तो दिखानी थी, पर वे तो हमें अपमानित करना चाहते थे। पिताजी बहुत ही दुखी हुए – बिरादरी से कट जाने के भय से वे कॉप उठे, अभी उनकी एक लड़की ब्याहने को थी। मैंने पिताजी को समझाया कि हमें बिरादरी ने छोड़ दिया है तो अब हम मानव परिवार के सदस्य हैं। मुझे हिंदू समाज का सारा ढॉचा इतना रुग्ण, सड़ा, गला, दुर्गंधित इससे पहले कभी नही लगा।[8]

घर में विवाह के बहुभोज से शुरू हुआ यह जाति–बहिष्कार तो हिंदू समाज की उस क्रूरता की शुरुआत भर थी जिसकी परिणति तो नही, पर पराकाष्ठा बच्चन की पहली पत्नी श्यामा के निधन के समय दिखाई देती है। दैनिक जीवन की कार्यवाही को छोड़ दें तो व्यक्ति को समाज की जरूरत कहॉ पड़ती है – जन्म, मृत्यु और विवाह जैसे सुख दुख के समय में। समाज या कहें समूह भी व्यक्ति की इस कमजोरी और अपनी इस ताकत को पहचानता है इसलिए ऐसे ही समय पर वह व्यक्ति पर दबाव बनाता है – अपने आदेशो को मानने के लिए। और ठीक यही समय है व्यक्ति के लिए अपनी निजता, आंतरिकता और आत्मनिष्ठता को पहचानने और उसे साबित करने का। बच्चन हर नई पीढ़ी के लिए अनुकरणीय केवल इसलिए नहीं हैं कि उन्होने समाज की सड़ी–गली परंपराओं के विरुद्ध विद्रोह किया और जीवन भर जाति–बहिष्कार के दंश को झेला, वे अनुकरणीय इसलिए हैं कि मृत्यु जैसी भयानक वेदना की स्थिति में भी वे न झुके न टूटे। हॉ, यह अवश्य है कि इस समय उन्हे अपने परिवार का पूरा साथ मिला। शालिग्राम के गौने की दावत में हुए जाति–बहिष्कार के कारण बिरादरी से कट जाने के जिस भय से बच्चन के पिता कॉप उठे थे, श्यामा की मृत्यु के समय वह कहीं नहीं था। पिता–पुत्र के अंतर्संबंधों और आपसी समझ को बतलाने वाला यह बेहतरीन प्रसंग हैं। बच्चन लिखते हैं 'पिताजी ने एक और कटुतर स्थिति के प्रति मुझे सचेत किया, हम अपने संबंधियों द्वारा बहिष्कृत लोग हैं, जो हमारे न्यौता देने पर हमारे यहॉ खाना खाने पर नही आए, क्या हम उन्ही को बुलायगें कि आकर हमारी बहू की लाश को कॉधा दें यह हो सकता है कि वे हमारे बुलाने से भी न आएं – हिंदू समाज बड़ा ही निर्दयी हो सकता है – मैंने अपनी जिंदा बहू का अपमान तो सह लिया था, पर अपनी मुर्दा बहू का अपमान मैं न होने दूँगा। और फिर निर्णय लिया जाता है कि तीन मर्द हम घर के हैं, तुम्हारे मामा जी को बुला लेगें और बस घर के लोग लाश को मसान तक पहुँचा देंगे।[9] यह व्यक्ति की अस्तित्वहीनता से उसके स्व–अस्तित्व की ओर उठता हुआ कदम है।

हम सब जानते हैं कि सामान्य व्यक्ति इन परिस्थितियों में ऐसा निर्णय लेने की सोच भी नही सकता। सच कहें तो व्यक्ति ऐसे समय में विचार–शून्य हो जाता है, पर बच्चन परिवार यह निर्णय लेता है। इसलिए बच्चन की आत्मकथा साधारण व्यक्ति की असाधारण विजयगाथा है। यह जीवन के अग्निपथ पर चलने वाले हर व्यक्ति के लिए वृक्षों की शीतल छाया प्रदान नही करती बल्कि अश्रु–स्वेद–रक्त से लथपथ होने के बावजूद बिना डरे बिना झुके, आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। भारतीय समाज आज भी जाति–धर्म–सम्प्रदाय की संकीर्णताओं से ऊपर नही उठ पाया है, बल्कि इनमें और अधिक फँसता जा रहा है। नित प्रति इस प्रकार की खबरें पढ़ने और सुनने को मिलती है कि कहीं किसी धर्म के ठेकेदारों ने फतवा जारी कर दिया तो कहीं किसी पंचायत ने फरमान सुना दिया। और पीडित व्यक्ति 'हुक्का–पानी बंद होने' और रोटी–बेटी का संबंध' खत्म होने के डर से समाज के आगे झुक जाता है, अपनी आत्मा की आवाज को मारकर, अपने आत्म–सम्मान को समाज के हाथों बेचकर मृत–तुल्य जीवन जीने को विवश हो जाता है। पर बच्चन के पिता जो निर्णय लेते हैं उसके लिए बच्चन लिखते हैं 'मैं समाज का मूल्य समझता हूँ। पर मैं चाहता हूँ कि व्यक्ति की स्वतंत्रता को भी बहुत सस्ता न समझ लिया जाए। असाधारण व्यक्ति ही नही, साधारण व्यक्ति भी, यदि उसकी स्वतंत्रता को, सत्ता को, चुनौती दी जाए तो सम्मानपूर्वक खड़ा हो सके। उस दिन जो पिताजी ने किया था वह साधारण व्यक्ति का ही साहस था। उससे हमें समाज से कट जाने की पीड़ा पहुँची हो, पर उससे निश्चय हमारे स्वाभिमान की रक्षा हुई थी।[10]

श्यामा की मृत्यु के प्रसंग मे ही हम एक ऐसे बच्चन से परिचित होते हैं जो कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी नीर–क्षीर–विवेक को धारण करने वाले हंस पक्षी साबित होते हैं। समाज में जन्म–मृत्यु, विवाह आदि ऐसे संस्कार हैं जिनके समय सामान्यतः मनुष्य अपनी बुद्धि के दरवाजे बंद कर लेता है और परंपरा से चली आ रही रीतियों के सामने सिर झुका लेता है। बिना उन रीतियों का अर्थ जाने, बिना किसी तर्क के आधार पर, एक सामान्य हिंदू सभी कर्म–कांडों को करता चला जाता है। पर बच्चन ऐसा नही करते – अतार्किक, बेहूदा और निरर्थक कर्मों को करने से वे साफ मना कर देते हैं। श्यामा के अंतिम संस्कार के प्रसंग का वर्णन करते हुए बच्चन लिखते हैं कि 'गंगा किनारे श्मशान घाट पर पहुँचने पर पिताजी ने इच्छा व्यक्त की कि यही उचित होगा कि श्यामा का दाह–कर्म मैं करुं। मैने कहा कि दाह तो मैं कर दूगां, पर 'कर्म' नही, यानी दाह से संबद्ध शेष कर्म–कांड नही। मुझसे यह नही होगा कि मैं एक–वस्त्र हो, छुरी–लोटा ले, तख्त पर चटाई डाल कर बैठूं, पीपल के पेड़ में घंट बाँधूं, सुबह उठकर प्रेतात्मा के पीने के लिए उसमे पानी डालूं, रात को पीपल के नीचे जाकर दिया जलाऊं और वह सब खटराग करुं जो नाई, ब्राह्मण, महाब्राह्मण मुझसे कराएं। इन सब बातों में मेरा बिल्कुल विश्वास नहीं। मैं लीक पीटना नही चाहता, मुझे तो यह सब पाखंड लगता है।[11]

बच्चन पाखंडरहित, छलरहित और आडंबरहीन जीवन जीने में विश्वास करते थे। अपनी आत्मकथा में वे सही मायने में एक आउटसाइडर के रूप में दिखाई देते हैं। काव्य में 'मैं सदा करता रहा हूँ जिस तरह प्रतिरोध अपना, मानवों में कौन मेरा उस तरह से कर सकेगा', कहने वाले बच्चन, अस्तित्ववादियों से कहीं अधिक गहरे अर्थों में अस्तित्ववादी जान पड़ते हैं। क्योंकि उनके जीवन और चिंतन में मानव–समाज में अकेले पड़े व्यक्ति की पीड़ा तो है ही, साथ ही साथ अपने अस्तित्व को स्थापित करने की प्रतिबद्धता भी। वे अस्तित्ववाद मानववाद है, कह कर नही रह जाते बल्कि मानवीय अस्तित्व को वास्तव में विशुद्ध मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित भी करते हैं। मानववाद, जो मानव को ही सब वस्तुओं का मापदंड मानता है फिर भला जाति, वर्ण, धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर कैसे किसी व्यक्ति को अभिशप्त मानकर बहिष्कृत और तिरस्कृत किया जा सकता है। इसलिए रचनाशीलता के स्तर पर बच्चन मधुशाला के रूप में ऐसे जीवन और मानव समाज की कल्पना करते हैं जहॉ कोई नही कहता कि किसी ने मेरी हाला और मेरे प्याले को छू दिया, तो मैं अशुद्ध हो गया। उनकी मधुशाला तो वर्षों से साम्यवाद की प्रथम प्रचारक के रूप में स्थापित है।

बच्चन की आत्मकथा से स्पष्ट होता है कि वे इन कुप्रथाओं के मात्र दृष्टा नही थे, वे भोक्ता भी थे और चिंतक भी थे। व्यक्तिगत आग्रहों और प्रयासों से वे इन घृणित रिवाजों का उन्मूलन करने का हौंसला रखते हैं और उन हौंसलों को अमली–जामा भी पहनाते हैं और ऐसे ही स्थानों पर वे नई पीढ़ी के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बन जाते हैं।

संदर्भ–ग्रंथ

1 क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – मुखपृष्ठ
2 क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – मुखपृष्ठ
3 राग विराग – निराला , संपादक – रामविलास शर्मा – पृष्ठ 91
4 राग विराग – निराला , संपादक – रामविलास शर्मा – पृष्ठ 103
5 क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृष्ठ 176
6 आवारा मसीहा – विष्णु प्रभाकर – पृष्ठ 291
7 क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृष्ठ 176–77
8 क्या भूलूँ क्या याद करूँ – बच्चन – पृष्ठ 177
9 नीड़ का निर्माण फिर – बच्चन – पृष्ठ 19
10 नीड़ का निर्माण फिर – बच्चन – पृष्ठ 21
11 नीड़ का निर्माण फिर – बच्चन – पृष्ठ 21